कविताएं

मुरलीधर वैष्णव
जोधपुर (राजस्थान)

धोरों की धड़कन

धोरों की तपन ने दिया है
अकूत धैर्य अतुल्य शौर्य
ताम्र को वर्ण जमीर को स्वर्ण
मर्यादा की पाग
और भीतर की आग

ये रेत के टीबें नहीं
युगों पुरानी दबी क्रोधाग्नि के
आणविक कण हैं
कभी रहे अथाह सागर की
विरहानिग्न से घटित अद्‌भुत क्षण हैं

इनकी छाती पर अटल सत्य सी खड़ी
खेजड़ी के प्रस्फुटन ने दी है हमें
होठों पे मुस्कान
संघर्ष की आन

आज पूनम की रात
चांदनी की डोली पे सवार
धीमे–धीमे उतर रही है
इन धोरों की लहरों पर मांड राग

एक बोरड़ी की छांव तले
इमरती सींवण की ओट में
अभी–अभी उतरा है
एक गंधर्व प्रेमी युगल
गोडावण बन
बैठे हैं यही कहीं
धोरों की ढलान पर
एक दूजे का आईना बने
ढोला–मरवण मूमल–महेन्द्रु

धोरों पर मढ़ें दौड़ती गूंगी के
पैरों के ये निशान नहीं
शायद अभी–अभी राधा
कृष्ण के संग होली है
या उनके दिव्य प्रेम की
यह कोई रंगोली है

धर्म और ईश्वर

सुबह–सुबह एक किताब में
धर्म को ढूंढ रहा था मैं
सोचा धर्म मिल जाएगा
तो शायद मिल जाय
आगे के पन्नों में छुपा ईश्वर भी
तभी चहचहाती चिड़ियाएं
घुस आई मेरे कमरे में
और घेर कर ले गई मुझे बाहर

बाहर देखा तो फैली थी वहां
कोहरे की हल्की सी चादर
मानों एक साथ जमा हो गई हो
रोज़ाना चौबीस हजार चालीस के हिसाब से
ली हुई अब तक की मेरी सांसें
पिछवाड़े खेत में लहलहा रही थी
ऊंचे घास की हरी पत्तियां
जैसे झूम–झूम कर
नाच रही हो ऋषिबालाएं
हरे लिबास में

झरने की कल–कल
और सुदूर पहाड़ी की चोटी को
हौले से छूती सूरज की किरणें
मानों झरने में नहाकर सूरज ने
चूम लिया हो उसे
उतारकर नथ उसकी पिघाल दिया हो
सारा स्वर्ण उसका
अपने जिस्म की गरमाहट से

देख रहा हूं मैं
पके आमों से लदा झुका अलफोंसों का पेड़
उसके पास सखा बन खड़ा एक गुलमोहर भी
घुल आया है सारा रस निचुड़ कर ईश्वर का
अलफोंसों के रस में
उतर आई है गुलमोहर के सुर्ख फूलों में
उसकी लालिमा
समा गई है उसकी सुगन्ध
केशर की सूखी पत्तियों में

चट्टानों से रिस रहा शिलाजीत
अर्क है उसका जो पहाड़ी ने चूस कर छुपा लिया था
कभी अपने गर्भ में
झड़ रही हैं मेरी इच्छाएं
उम्र के इस पतझड़ में
और उड़ रहा हूं मैं सवार हो
बादलों के इंद्रधनुषी विमान पर

साझी यात्रा

तुम चिकने और तरल थे
ढलान तलाश कर बहते रहे
हम अनगढ़ रोड़े
अड़ते टकराते बढ़ते रहे

यात्रा तो हमारी साझी थी
पर एक पड़ाव पर
हमने देखा तुम शिवलिंग बने
चंदन का लेप ले रहे थे

और हम गंगू के चुल्हे पर पड़े
तवे के अटोकन बने
आंच और धुंआ झेल रहे थे।

धूल हूं मैं....

धूल हूं मैं
सदियों से खंड खंड हो रही
वक्त की भूजल हूं मैं

सरकाओगे जो प्रेम से
कोने में सिमट जाऊंगी
मारोगे यदि ठोकर
तो सर पर चढ जाऊंगी

धूल हूं मैं
ढक दूंगी तुम्हें नखशिख
देख भी न सकोगे तुम मेरा कुपित
गुबार
शाश्वत है मेरा जमीर
चिरकाल से हूं मैं खुद्दार

चाहोगे मेरी गोद तो मां बन जाऊंगी
पकड़ोगे जो मुट्ठी में
तो हौले से फिसल जाऊंगी

धूल हूं मैं
कायनात की सांस हूं
तुम्हारे रोम–रोम में रची बसी
भविष्य की आश हूं मैं

कितना ही छिटकाओ मुझे
मुझसे बच नहीं पाओगे
आज मैं लिपट रही हूं तुमसे
कल तुम मुझ में मिल जाओगे

धूल हूं मैं
सदियों से खंड–खंड हो रही
वक्त की भूल हूं मैं...

हमारा सूरज

हर सुबह
दो छोटे–छोटे डग भरता

उल्लास के पंख लगाए
दिव्य मुस्कान की किरणें
बिखेरता

एक बचपन
हमारे दक्षिणी पड़ोस से

ठुमकता आता है
और खिलखिलाकर

घोषणा करता है
कि इस घर में सूरज

पूर्व से नहीं दक्षिण से उगता है